[2018] 2 एससीआर 636

यूको बैंक एवं अन्य

बनाम

राजेंद्र शंकर शुक्ला

सिविल अपील संख्या 2693 वर्ष 2013

15 फरवरी, 2018

[मदन बी लोकुर व दीपक गुप्ता, माननीय न्यायमूर्तिगण]

सेवा विधि - सेवानिवृत्ति के बाद सेवा से बर्खास्तगी - प्रत्यर्थी का स्वामित्व- जब प्रत्यर्थी अपीलकर्ता-बैंक के विस्तार काउंटर का प्रभारी था- ने 1991 में अपिलरथी बैंक में अपने खाते से अपने भाई के पक्ष में 3 लाख रुपये का चेक जारी किया, जबकि उसके खाते में केवल 1,000 रुपये थे - प्रत्यर्थी द्वारा बैंक को 'भुगतान रोको' संचार के बावजूद प्रत्यर्थी के भाई ने चेक प्रस्तुत किया और इसे अस्थायी रूप से भुनाया - प्रत्यर्थी को 1998 में आरोप पत्र जारी किया गया था - प्रत्यर्थी जनवरी, 1999 में सेवानिवृत्त हो गया लेकिन उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रही और उसे अनुशासनात्मक प्राधिकरण के आदेश से सेवा से बर्खास्त कर दिया गया - उच्च न्यायालय ने उक्त आदेश को निरस्त कर दिया - निर्धारित किया: प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप पत्र जारी करने में लगभग 7 वर्षों की भारी देरी हुई, जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है - इस आधार पर ही, प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप पत्र रद्द किया जा सकता है - भले ही प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप साबित हो गया हो, यह उसके लिए एक व्यक्तिगत कार्रवाई थी और बैंक कर्मचारियों पर लागू आचरण विनियमों के दायरे में कदाचार नहीं होगा - इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी को आरोप पत्र जारी किए जाने से पहले, उन्हें एफ मैनेजर के रूप में एक उच्च श्रेणी में रखा गया था और दक्षता सीमा को पार करने की भी अनुमति दी गई थी - यदि बैंक कदाचार के लिए प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही करने के विषय में गंभीर था, तो वे उसे ऐसे लाभ नहीं देते - इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी को उसकी पेंशन के साथ-साथ निर्वाह भत्ता से भी वंचित कर दिया गया था, जिसने उसे अनुशासनात्मक जाँच में प्रभावी ढंग से भाग लेने से रोक दिया था - इस आधार पर भी, प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही दूषित है - प्रत्यर्थी पर उसकी सेवानिवृत्ति के बाद बर्खास्तगी का दण्ड अधिरोपित नहीं किया जा सकता था - उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं - अपीलकर्ता पर लगाया गया 1 लाख रुपये का जुर्माना - यूको बैंक (अधिकारी) सेवा विनियम, 1979 - विनियमन 20 (3) (iii) - यूको बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 - यूको बैंक (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881

सेवा विधि - निर्वाह भत्ता - विभागीय जाँच के लम्बित रहने के दौरान पात्रता - न्याय तक पहुंच पर चर्चा की गई।

अपील को निरस्त करते हुए, न्यायालय ने

कहा: 1.1 भले ही प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप साबित हो गया हो, यह बैंक कर्मचारियों पर लागू आचरण विनियमों के दायरे में कदाचार नहीं होगा, अपितु उसके लिए एक व्यक्तिगत कार्रवाई थी। यह मानते हुए कि कदाचार साबित हो गया था, विधि के अनुसार और यदि अनुमन्य हो तो यूको बैंक (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के अंतर्गत उचित कार्रवाई की जा सकती है। 'भुगतान बंद करने' के प्रत्यर्थी के निर्देश ने शायद उसे अपने भाई द्वारा कुछ कार्रवाई के लिए उत्तरदायी बना दिया होगा, लेकिन निश्चित रूप से बैंक द्वारा नहीं। [पैरा 10, 11]

1.2 प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप पत्र जारी करने में लगभग 7 साल की भारी देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। इस आधार पर ही प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप पत्र जारी करने में अत्यधिक और अस्पष्ट देरी के कारण इसे रद्द किया जा सकता है। बैंक की ओर से चूक यह है कि प्रत्यर्थी को जुलाई, 1994 में प्रबंधक के रूप में उच्च श्रेणी में रखा गया था। उन्हें अगस्त, 1996 में दक्षता सीमा को पार करने की अनुमति भी दी गई थी। निश्चित रूप से, यदि बैंक कदाचार के लिए प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही करने के बारे में गंभीर था, तो उन्होंने न केवल आरोप पत्र जारी करने में त्वरित कार्रवाई की होती, अपितु उसे उच्च श्रेणी में रखे जाने या दक्षता सीमा को पार करने का लाभ नहीं दिया जाता। [पैरा 12, 13]

1.3 एक कर्मचारी अपने विरुद्ध लम्बित जाँच के दौरान निर्वाह भत्ता का हकदार है, लेकिन यदि वह कर्मचारी शून्य भुगतान से वित्त से वंचित है, तो कर्मचारी से विभागीय जाँच में सार्थक रूप से भाग लेने की उम्मीद करना अनुचित होगा। न्याय तक पहुंच हर व्यक्ति के लिए उपलब्ध एक मूल्यवान अधिकार है, यहां तक कि एक अपराधी के लिए भी, और वास्तव में एक अपराधी को भी निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। विभागीय जाँच के मामले में, अपराधी कदाचार का दोषी है, लेकिन पेंशन (जहां भी लागू हो) या निर्वाह भत्ता (जहां भी लागू हो) तक पहुंच से इनकार करने का कोई आधार नहीं है। प्रत्यर्थी को उसकी पेंशन के साथ-साथ निर्वाह भत्ता से भी वंचित कर दिया गया था, जिसे उन्हें अनुशासनात्मक जाँच में प्रभावी ढंग से भाग लेने से रोका। इस आधार पर भी, प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही प्रभावित होती है। प्रत्यर्थी को उसकी सेवानिवृत्ति के बाद बर्खास्तगी की सजा नहीं दी जा सकती थी। [पैरा 14, 15 और 19]

यूको बैंक एवं अन्य बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े **[2010 सिविल अपील संख्या 4725 वर्ष 2010 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 20.5.2010 का निर्णय];** *यूको बैंक एवं एक अन्य बनाम राजिंदर लाल कपूर* **2007 (6) एससीसी 694: [2007] 7 एससीआर 543** पर आश्रय व्यक्त किया।

<u>वाद विधि संदर्भ</u>

[2007] 7 एससीआर 543 आश्रय किया पैरा 17

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 2693 वर्ष 2013

रिट अपील संख्या 60 वर्ष 2007 में विलाससपुर में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 07.05.2010 से।

पक्षकारों हेतु उपस्थित अधिवक्तागण पी.एच. पारेख, वरिष्ठ अधिवक्ता, राजेश सिंह, विशाल प्रसाद, शिशिर माथुर, वीरेश बी. सहार्य, अक्षत अग्रवाल।

न्यायालय का निर्णय माननीय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर द्वारा दिया गया

1. यह अपील विभागीय जाँच में न्याय तक पहुंच पर विधि का एक आकर्षक प्रश्न उठाती है। हमारी राय में, प्रत्यर्थी (राजेंद्र शंकर शुक्ला) को वित्तीय संसाधनों से वंचित करके खुद का बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया गया था। मामले के गुण-दोष पर भी, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

2. शुक्ला के विरुद्ध आरोप था कि 3 अक्टूबर, 1987 से 8 जुलाई, 1994 तक यूको बैंक के एक्सटेंशन काउंटर के प्रभारी रहते हुए उन्होंने 25 जनवरी, 1991 को अपने भाई के पक्ष में 3 लाख रुपये की राशि का चेक जारी किया था। उस समय, शुक्ला के खाते में केवल 1,000/- रुपये थे। हम केवल इस व्यापक आरोप से चिंतित हैं।

3. शुक्ला को यूको बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के प्रावधानों के अंतर्गत प्रत्यर्थी (बैंक) द्वारा 20 मई, 1998 (लगभग 7 वर्षों बाद) को आरोप पत्र जारी किया गया था। शुक्ला के विरुद्ध आरोप के लेख इस प्रकार थे: -

(i) श्री आर.एस.शुक्ला ने पर्याप्त शेष राशि की कोई व्यवस्था किए बिना और उसका सम्मान करने के इरादे के बिना अपने संयुक्त खाते पर चेक जारी किया/जारी करवाया, केवल बैंक की कीमत पर अपने रिश्तेदार को गलत लाभ पहुंचाने के लिए। इस प्रकार वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ करने में विफल रहे हैं, जो यूको बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के विनियमन 3 का उल्लंघन है।

(ii) श्री शुक्ला ने अपने पुत्र को सरकारी पत्राचार (क्षेत्रीय कार्यालय, रायपुर और उनकी शाखा के बीच आदान-प्रदान) उपलब्ध कराकर, जिसे उन्होंने बाद में उनके द्वारा लिए गए परिवहन ऋण के समझौते के अपने प्रस्ताव में उद्धृत किया था, न केवल बैंक के हितों के विरुद्ध कार्य किया है, अपितु जानबूझकर गोपनीय प्रकृति की जानकारी एक व्यक्ति - उसके पुत्र को प्रकट की है जो, इसका हकदार नहीं है, जो यूको बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के संशोधित विनियमन 4 का उल्लंघन है।

(iii) लागू दरों पर ब्याज का भुगतान किए बिना एनएससी और एफडीआर के लिए अनुमेय राशि से कहीं अधिक ऋण प्राप्त करके, श्री आरएस शुक्ला निष्ठा, ईमानदारी और अत्यंत निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रहे हैं। यह अधिनियम यूको बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के यथासंशोधित विनियम 3 का उल्लंघन है।

4. शुक्ला 31 जनवरी, 1999 को सेवानिवृत्त होने वाले थे। उनकी सेवानिवृत्ति से कुछ दिन पहले, सक्षम प्राधिकारी ने यूको बैंक (अधिकारी) सेवा विनियम, 1979 (संक्षेप में "विनियम") के विनियमन 20 (3) (iii) को लागू करते हुए एक पत्र जारी किया। विनियम 20 (3) (iii) इस प्रकार है-

"जिस अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही आरम्भ की गई है, वह सेवानिवृत्ति की तिथि को सेवा में नहीं रहेगा, किन्तु अनुशासनात्मक कार्यवाही तब तक जारी रहेगी जैसे कि वह सेवा में था जब तक कि कार्यवाही समाप्त नहीं हो जाती और उसके संबंध में अंतिम आदेश पारित नहीं कर दिया जाता। संबंधित अधिकारी को सेवानिवृत्ति की तिथि के बाद कोई वेतन और/या भत्ता नहीं मिलेगा। वह तब तक सेवानिवृत्ति लाभ के केन्द्रीय अंशदायी कोष में उनके स्वयं के योगदान को छोड़कर भुगतान के हकदार नहीं होंगे जब तक कि कार्यवाही पूरी नहीं हो जाती और उस पर अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाता।"

5. उपर्युक्त विनियम को ध्यान में रखते हुए, शुक्ला ने अपनी सेवानिवृत्ति प्राप्त करने पर 31 जनवरी, 1999 को सेवा में रहना बंद कर दिया, लेकिन उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रही। शुक्ला ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया, लेकिन जाँच अधिकारी ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें आरोप 1 और 3 साबित हुए जबकि आरोप 2 साबित नहीं हुआ। अनुशासनात्मक प्राधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सभी तीन आरोप साबित हो गए थे और जहां तक आरोप 1 का संबंध है, उन्होंने 30 जून, 1999 को शुक्ला को सेवा से बर्खास्त करने का आदेश पारित किया, जो आमतौर पर भविष्य के रोजगार के लिए अयोग्यता होगा।

6. शुक्ला द्वारा विभागीय अपील योजित की गई थी। विभागीय अपील लम्बित रहने के दौरान शुक्ला ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में रिट याचिका योजित की। बाद में शुक्ला द्वारा योजित विभागीय अपील निरस्त कर दी गई। रिट याचिका को छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया और दिनांक 21 दिसंबर, 2006 के एक निर्णय और आदेश द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित 30 जून, 1999 के आदेश को निरस्त कर दिया। बैंक द्वारा योजित अपील को उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा दिनांक 7 मई, 2010 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था। इन परिस्थितियों में वर्तमान अपील इस न्यायालय में प्रस्तुत की गई।

7. प्रारंभ में, हम यह स्पष्ट करते हैं कि बैंक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया कि वह केवल आरोप 1 से संबंधित थे और उन्होंने आरोप 2 और आरोप 3 के

संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकरण के निष्कर्षों की शुद्धता को सही ठहराने की कोशिश नहीं की।

8. विद्वान एकल न्यायाधीश ने कुछ अत्यंत प्रासंगिक तथ्यों का उल्लेख किया। निस्संदेह चेक शुक्ला द्वारा 25 जनवरी, 1991 को जारी किया गया था (हालांकि उन्होंने दावा किया कि उनकी पत्नी ने चेक पर हस्ताक्षर किए थे) लेकिन उन्होंने 6 मार्च, 1991 को एक पत्र द्वारा बैंक को भुगतान रोकने का निर्देश दिया। 'भुगतान रोको' संचार के बावजूद, उनके भाई ने 2 अप्रैल, 1991 को नकदीकरण के लिए चेक प्रस्तुत किया और इसे अस्थायी रूप से भुना लिया गया।

9. हमें शुक्ला के अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है कि 19 जुलाई, 1994 को उन्हें प्रबंधक के रूप में उच्च श्रेणी में पदोन्नत किया गया था और 12 अगस्त, 1996 को उन्हें दक्षता सीमा पार करने की अनुमति दी गई थी। ये घटनाएं शुक्ला को चार्जशीट जारी होने से पहले हुईं।

10. विद्वान एकल न्यायाधीश ने विचार किया कि एक बैंक कर्मचारी का एक ही बैंक में खाता होने पर कोई प्रतिबंध नहीं है और यदि ऐसे कर्मचारी द्वारा जारी चेक का अनादर किया जाता है, तो शिकायतकर्ता द्वारा पराक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 के प्रावधानों के अंतर्गत कार्रवाई की जा सकती है, लेकिन बैंक यूको बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के अंतर्गत कार्रवाई नहीं कर सकता है। इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि भले ही आरोप 1 साबित हो जाए, यह बैंक कर्मचारियों पर लागू आचरण विनियमों के दायरे में कदाचार नहीं होगा। यह भी कहा गया कि यह मानते हुए कि कदाचार साबित हो गया है, विधि के अनुसार यदि अनुमत हो तो यूको बैंक (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के अंतर्गत उचित कार्रवाई की जा सकती है।

11. उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं पाई और तदनुसार बैंक द्वारा योजित अपील को निरस्त कर दिया। खण्डपीठ ने कहा कि शुक्ला द्वारा 3 लाख रुपये का चेक जारी करने की कार्रवाई, जबकि उनके खाते में केवल 1,000 रुपये थे, कदाचार नहीं था, अपितु उनके लिए एक व्यक्तिगत कार्रवाई थी। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि भुगतान रोकने के उनके निर्देश ने शायद उन्हें अपने भाई द्वारा कुछ कार्रवाई के लिए उत्तरदायी बना दिया होगा, लेकिन निश्चित रूप से बैंक द्वारा नहीं।

12. हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है। हालांकि, हमारे लिए कुछ तथ्यों को प्रकाश में लाना आवश्यक है जो विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुतियों के दौरान हमारे ध्यान में लाए गए थे। चिंता का पहला विषय शुक्ला के विरुद्ध चार्जशीट जारी करने में लगभग 7 वर्षों की भारी देरी है। इस अस्पष्ट देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक के भीतर कुछ आंतरिक चर्चाएं चल रही थीं, लेकिन बैंक को अपना मन बनाने में 7 वर्ष लग गए, यह पूरी तरह से अनुचित और अस्वीकार्य है। इस आधार पर शुक्ला के विरुद्ध आरोप पत्र जारी करने में अत्यधिक और अस्पष्ट देरी के कारण इसे रद्द किया जा सकता है।

13. बैंक की ओर से चूक यह है कि शुक्ला को 19 जुलाई, 1994 को प्रबंधक के रूप में उच्च श्रेणी में रखा गया था, जबकि ये सभी चर्चाएं बैंक में चल रही थीं। उन्हें 12 अगस्त, 1996 को फिर से दक्षता पट्टी पार करने की अनुमति दी गई थी, जबकि चर्चा चल रही थी। निश्चित रूप से, यदि बैंक शुक्ला के विरुद्ध कदाचार के लिए कार्यवाही करने के बारे में गंभीर था, तो उन्होंने न केवल आरोप पत्र जारी करने में त्वरित कार्रवाई की होती, अपितु उन्हें उच्च श्रेणी में रखे जाने या दक्षता सीमा को पार करने का लाभ नहीं दिया होता।

14. हम शुक्ला के अधिवक्ता से यह जानकर भी आश्चर्यचकित थे कि 31 जनवरी, 1999 को उनकी सेवानिवृत्ति के बाद शुक्ला को अनुशासनात्मक जाँच के लम्बित रहने के दौरान कुछ भी भुगतान नहीं किया गया था। उन्हें वेतन का भुगतान नहीं किया गया था क्योंकि वह सेवानिवृत्त हो गए थे। किसी कारण से उन्हें उनकी पेंशन का भुगतान नहीं किया गया था, शायद इसलिए कि उनके विरुद्ध विभागीय जाँच लम्बित थी। अनुशासनात्मक जाँच लम्बित रहने की अवधि के दौरान और उसके बाद 30 जून, 1999 तक उन्हें कोई निर्वाह भत्ता भी नहीं दिया गया था। दूसरे शब्दों में, शुक्ला को वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा और संभवतः, उनके पास खुद का बचाव करने का उचित अवसर नहीं था।

15. एक कर्मचारी अपने विरुद्ध लम्बित जाँच के दौरान निर्वाह भत्ता का हकदार है, लेकिन अगर वह कर्मचारी शून्य भुगतान से वित्त से वंचित है, तो कर्मचारी से विभागीय जाँच में सार्थक रूप से भाग लेने की उम्मीद करना अनुचित होगा। न्याय तक पहुंच हर व्यक्ति के लिए उपलब्ध एक मूल्यवान अधिकार है, यहां तक कि एक अपराधी के लिए भी, और वास्तव में एक अपराधी को भी निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। विभागीय जाँच के मामले में, अपराधी कदाचार का दोषी है, लेकिन पेंशन (जहां भी लागू हो) या निर्वाह भत्ता (जहां भी लागू हो) तक पहुंच से इनकार करने का कोई आधार नहीं है। जहां तक शुक्ला का सवाल है, उन्हें पेंशन के साथ-साथ निर्वाह भत्ता से भी वंचित कर दिया गया, जिसने उन्हें अनुशासनात्मक जाँच में प्रभावी रूप से भाग लेने से रोक दिया। इस आधार पर भी शुक्ला के विरुद्ध कार्यवाही प्रभावित होती है।

16. अंत में, हम ***यूको बैंक एवं अन्य बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े*** मामले में इस न्यायालय के एक असूचित निर्णय की ओर भी ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। इस निर्णय में, न्यायालय ने उन विनियमों जिनसे हम संबंधित हैं, के प्रावधानों पर विचार किया और कहा:

> "इन विनियमों का सार यह है कि भले ही एक अधिकारी कर्मचारी के विरुद्ध उसकी सेवानिवृत्ति से पहले शुरू की गई विभागीय जाँच उसकी सेवानिवृत्ति के बाद भी जारी रह सकती है, 1979 विनियमों के विनियमन 4 में निर्दिष्ट किसी में भी मूल दंड, जिसमें सेवा से बर्खास्तगी सम्मिलित है, एक अधिकारी कर्मचारी पर उसकी सेवानिवृत्ति के बाद अधिवषता की आयु प्राप्त करने पर नहीं लगाया जा सकता है। इसलिए, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा 12.10.2004 को प्रत्यर्थी के विरुद्ध पारित किया गया आदेश, जो 31.12.1993 को सेवानिवृत्त हो गया था,

जिससे उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, प्रथम दृष्टया अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर था और उच्च न्यायालय ने इसे रद्द करके कोई त्रुटि नहीं की थी।"

17. हम ***यूको बैंक एवं एक अन्य बनाम राजिंदर लाल कपूर*** मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय का भी संदर्भ दे सकते हैं। यह निर्णय भी उन्हीं विनियमों से संबंधित है जिनसे हम संबंधित हैं।

18. इन विनियमों के व्यवहार में, न्यायालय द्वारा रिपोर्ट के पैरा 22 में यह निम्नानुसार देखा गया था:

"इसलिए, प्रत्यर्थी को सेवानिवृत्ति की अनुमति दी गई है, अन्य बातों के साथ-साथ, प्रत्यर्थी के विरुद्ध पेंशन विनियमों के अंतर्गत अपनी पेंशन रोकने के लिए केवल एक कार्यवाही शुरू की जा सकती थी। इस प्रकार अनुशासन और अपील विनियम आकर्षित नहीं होते। परिणामतः, आरोप-पत्र, जाँच रिपोर्ट और अनुशासनात्मक प्राधिकरण और अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित दण्ड के आदेशों को अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर माना जाना चाहिए।"

19. इन परिस्थितियों में, हमें बैंक द्वारा योजित अपील को इस आधार पर भी निरस्त करने में कोई संकोच नहीं है कि शुक्ला को उनकी सेवानिवृत्ति के बाद बर्खास्तगी की सजा नहीं दी जा सकती थी।

20. हालांकि, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने बैंक के विरुद्ध निर्णय दिया था और खण्ड पीठ ने भी बैंक के विरुद्ध निर्णय दिया था। इसके बावजूद बैंक ने इस अपील को प्राथमिकता दी। न्यायालय द्वारा दिए गए कम से कम दो निर्णयों के बावजूद विधिक स्थिति स्पष्ट करने के बावजूद अपील को प्राथमिकता दी गई। बैंक को यह सलाह दी जाती कि वह सेवानिवृत्त हो चुके कर्मचारी के विरुद्ध अनावश्यक रूप से मुकदमा चलाने के बजाय इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का पालन करे। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि शुक्ला ने मुकदमेबाजी में काफी राशि खर्च की होगी। तदनुसार, अपील को निरस्त करते समय, हम 1 लाख रुपये का जुर्माना लगाते हैं। शुक्ला को उनके विधिक खर्चों के लिए आज से 4 सप्ताह के भीतर एक लाख रुपये का भुगतान किया जाएगा।

अपील निरस्त

अनुवादकर्ता
मणि यज्ञेश त्रिपाठी
अधिवक्ता,
इलाहाबाद उच्च न्यायालय